SAMVARDHINI
PEER REVIEWED MULTILINGUAL E-RESEARCH JOURNAL
(ISSN ONLINE: - 2583-7176)
https://samvardhini.in
https://www.samskritpromotion.in

SAMVARDHINI :- 01/06/2026
Volume – 8
Issue – 1
(ISSN ONLINE:- 2583-7176)
https://samvardhini.in

संस्कृतवाङ्मय में वर्णोच्चारण-विधि (संस्कृत भाषा-शिक्षण के विशेष परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. दिव्या देशपांडे

शोधसार –

मनुष्य के विचारों और ज्ञान को शब्दरूप में व्यक्त करने वाली शक्ति को वाक्शक्ति कहा जाता है। वाक्शक्ति मानव की अमूल्य संपदा है। शुद्ध,मधुर और हितकारी वाणी द्वारा सर्वत्र सम्मान की प्राप्ति होती है। वाणी के बिना ज्ञान का प्रवाह संभव नहीं है।

भाषा,वाणी का व्यवहारिक रूप है। मुख से उच्चरित वर्णों का समूह शब्द कहलाता है, शब्दों का समूह वाक्य और वाक्यों का समूह भाषा कहलाती है। भाषा विचार-विनिमय का मुख्य साधन है। व्यक्तित्वविकास में भाषा-कौशल का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्पष्ट, शुद्ध और प्रभावी उच्चारण व्यक्ति के उत्तम व्यक्तित्व का परिचायक है। यही कारण है कि, प्राचीन व्याकरण एवं भाषाशास्त्रीय ग्रंथों में वर्णोच्चारण विधि का विशेष रुप से वर्णन किया गया है।

भाषाशिक्षण की दृष्टि से वर्णोच्चारणशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। वर्णोच्चारण प्रक्रिया के विषय में संस्कृतवाङ्मय में उदात्तवर्णन प्राप्त होता है। प्राचीन आचार्यों ने शुद्धोच्चारण क्षमता को अत्यन्त आवश्यक माना है। उत्तम उच्चारण क्षमता का विकास आवश्यक है। अतः संस्कृत वाङ्मय में उत्तम वाचक को अपने व्यक्तित्व में किन गुणों का विकास करना आवश्यक है, इसका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

संस्कृतवाङ्मय न केवल उत्तम वर्णोच्चारण के लिये गुणों के विकास हेतु निर्देशित करता है अपितु उच्चारण दोष एवं उनके फलस्वरूप होने वाली हानियों को भी इंगित करता है। इसी प्रकार संस्कृत वाङ्मय में न केवल शास्त्रग्रन्थों, स्मृतियों अथवा शिक्षा वेदाङ्ग में अपितु काव्यों में भी उच्चारण महिमा अर्थात् शुद्धोच्चारण की आवश्यकता एवं लाभ वर्णित है।

शुद्धोच्चारण हेतु संस्कृत वाङ्मय में वर्णित वर्णोच्चारण-विधि निश्चित रूप से अत्यंत प्रासंगिक है, विशेषकर संस्कृत भाषा-शिक्षण की दृष्टि से यह वर्णन अपरिहार्य है। अतः न केवल भाषा सौन्दर्य, अपितु अर्थशुद्धि की दृष्टि से भी इन ग्रन्थों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

कूटशब्द – *संस्कृतवाङ्मय,वर्णोच्चारण-विधि,वर्णोच्चारण-प्रक्रिया, उच्चारणदोष, शुद्धोच्चारण।*

डॉ. दिव्या देशपांडे
स्नातकोत्तर (संस्कृत), पीएच.डी, NET
सहायक प्राध्यापिका (संस्कृत)
शासकीय दू.श्री. वै. संस्कृत महाविद्यालय,रायपुर(छ.ग.)
Email id- divyasanskrit9@gmail.com

मनुष्य के विचारों और ज्ञान को शब्दरूप में व्यक्त करने वाली शक्ति को वाक्शक्ति कहा जाता है। वाक्शक्ति मानव की अमूल्य संपदा है। शुद्ध,मधुर और हितकारी वाणी द्वारा सर्वत्र सम्मान की प्राप्ति होती है। वाणी के बिना ज्ञान का प्रवाह संभव नहीं है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि के अनुसार यदि वाणी रूपी शक्ति न हो तो ज्ञान का प्रकाश संभव नहीं –

वाग्रूपता चेन्निष्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती।

न प्रकाशः प्रकाशते सा हि प्रत्यवमर्शिनी ।।[1]

आचार्य दण्डी के अनुसार शब्द रूपी प्रकाश के बिना तीनों लोक अंधकारमय हैं –

इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्।

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ।।[2]

वेदों में भी वाणी की महिमा का वर्णन है –

यं कामये तंतमुग्र कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।[3]

भाषा, वाणी का व्यवहारिक रूप है। मुख से उच्चरित वर्णों का समूह शब्द कहलाता है, शब्दों का समूह वाक्य और वाक्यों का समूह भाषा कहलाती है। भाषा विचार-विनिमय का मुख्य साधन है। व्यक्तित्व विकास में भाषा-कौशल का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्पष्ट, शुद्ध और प्रभावी उच्चारण व्यक्ति के उत्तम व्यक्तित्व का परिचायक है।यही कारण है कि प्राचीन व्याकरण एवं भाषाशास्त्रीय ग्रंथों में वर्णोच्चारण विधि का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। वेदमन्त्रों के लिये भी गुरुमुखोच्चारणानुच्चारण परम्परा आवश्यक मानी गई।

अक्षर तथा वर्ण

'अक्षर' वह है जो क्षरित नहीं होता है, अर्थात् अखंड ध्वनि। 'अशू' व्याप्तौ धातु से औणादिक 'सरन्' प्रत्यय योजित कर 'अक्षर' शब्द की निष्पत्ति होती है। इस प्रकार '**अश्नुते इत्यक्षरम्** 'यह व्युत्पत्ति होती है।

अक्षरं न क्षरं विद्यात् अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्। [4]

महर्षि पतंजलि के अनुसार वर्ण एवं अक्षर पर्यायवाची हैं तथा वर्णसमाम्नाय ही अक्षरसमाम्नाय है, परंतु शुक्ल यजुर्वेद प्रातिशाख्य में दोनों में सूक्ष्म भेद बताया गया है।

स्वरोऽक्षरम्। सहाद्यैर्व्यञ्जनैः। उत्तरैश्चावसितैः।[5]

वर्णोच्चारण-प्रक्रिया

भाषाशिक्षण की दृष्टि से वर्णोच्चारणशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। वर्णोच्चारण-प्रक्रिया के विषय में संस्कृतवाङ्मय में उदात्तवर्णन प्राप्त होता है। आचार्य पाणिनि के अनुसार —

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युक्ते विवक्षया।

मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥

....   वक्त्रमापद्य मारुतः।

वर्णान् जनयते तेषां विभागः पंचधा स्मृतः॥ [6]

आत्मा बुद्धि के साथ अर्थ ग्रहण करती है, फिर मन उसे व्यक्त करने की इच्छा करता है। मन प्राणवायु को प्रेरित करता है, वह कण्ठादि स्थानों पर आघात कर वर्णों को उत्पन्न करता है।

वर्णों के उत्पन्न होने से पहले मन्द्र, मध्यम और तार स्वर का विभाजन होता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार दूर से व्यक्ति से बात करते समय तार स्वर, निकटस्थ मध्यस्वर और पार्श्व होने पर मन्द्र स्वर का प्रयोग करना चाहिए।

सर्वेषामप्येषां मन्द्रमध्यतारकृतः प्रयोगस्त्रिस्थानगतः।

तत्र दूरस्थाभाषणे तारं शिरसा,

नातिदूरे मध्यं कण्ठेन, पार्श्वतो मन्द्रमुरसा प्रयोजयेत्पाठ्यमिति। [7]

भर्तृहरि के अनुसार ज्ञान पहले सूक्ष्म रूप में अंतःकरण में स्थित होता है, पुनः वह शब्द का रूप धारण करता है। वह वक्तृज्ञान मानसीभाव को प्राप्त कर शरीर की अग्नि से परिपक्व होकर प्राणवायु के साथ ऊपर उठकर ध्वनि रूप में परिवर्तित होकर विभिन्न वर्णों में व्यक्त होता है -

अथायमान्तरो ज्ञाता सूक्ष्मे वागात्मनि स्थितः ।

व्यक्तये स्वस्य रूपस्य शब्दत्वेन विवर्तते ॥

स मनोभावमापद्य तेजसा पाकमागतः ।

वायुमाविशति प्राणमथासौ समुदीर्यते ॥

विभजन् स्वात्मनो ग्रन्थीन् श्रुतिरूपैः पृथग्विधैः।

प्राणो वर्णानभिव्यज्य वर्णेष्वेवोपलीयते ॥ [8]

आपिशलशिक्षा के अनुसार नाभि से प्रेरित प्राणवायु ऊपर उठती है, वक्षस्थल, कण्ठ आदि स्थानों से टकराकर ध्वनि उत्पन्न करती है, वही ध्वनि वर्णश्रुति कहलाती है।

नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितः प्राणो नाम वायुरुर्ध्वमाक्रामन्नुरः प्रभृतीनां स्थानानामन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्नेन विधार्यते। स विधार्यमाणो वायुः स्थानमभिहन्ति । तस्मात् स्थानाभिघाताद् ध्वनिरुत्पद्यते आकाशे । सा वर्णश्रुतिः स वर्णस्यात्मलाभः।[9]

इस प्रकार स्पष्ट है कि, वर्णोच्चारण प्रक्रिया न केवल शारीरिक प्रक्रिया है अपितु यह एक मानसिक अवस्था भी है, जहाँ आत्मा, बुद्धि एवं मन का सामंजस्य स्थापित होता है।

उत्तमपाठक

प्राचीन आचार्यों ने शुद्धोच्चारण क्षमता को अत्यन्त आवश्यक माना है। शुद्धोच्चारण क्षमता से युक्त व्यक्ति ब्रह्मलोक में पूज्य माना गया है –

सम्यग् वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते। [10]

महर्षि पतञ्जलि ने शास्त्रज्ञानपूर्वक सम्यक् शब्दप्रयोग को अभ्युदय का कारण बताया है –

शास्त्रपूर्वकं यः शब्दान्प्रयुङ्क्ते सोऽभ्युदयेन युज्यते। [11]

अत: उत्तम उच्चारण क्षमता का विकास आवश्यक है। संस्कृत वाङ्मय में उत्तम वाचक को अपने व्यक्तित्व में किन गुणों का विकास करना आवश्यक है, इसका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। पाणिनीयशिक्षा में उत्तमवाचक के गुणों का वर्णन करते हुये कहा गया है -

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।

धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ।।[12]

माधुर्य अर्थात् वर्णों का कर्णसुखद होना, अक्षरों की व्यक्ति अर्थात् उनकी स्पष्टता, पदच्छेद अर्थात् पदों के उच्चारण में उचित स्थान पर विराम, सुस्वर अर्थात् उत्तम कण्ठस्वर, धैर्य अर्थात् पाठक में त्वरा की प्रतीति का अभाव तथा लयसामर्थ्य अर्थात् लय की दृष्टि से उच्चारण की गति में अवरोध न प्राप्त होना; ये छह उत्तम पाठक के गुण महर्षि पाणिनी द्वारा वर्णित हैं।

याज्ञवल्क्य शिक्षा के अनुसार उच्चारण करते समय उच्चारयिता की शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक एकाग्रता आवश्यक है, साथ ही मन का दृढ़ीकरण भी आवश्यक है क्योंकि अशान्त एवं भयग्रस्त स्थिति में वक्ता शुद्धोच्चारण में समर्थ नहीं होता है –

कूर्मोऽङ्गानीव संहृत्य चेष्टां दृष्टिं दृढं मनः।

स्वस्थः प्रशान्तो निर्भीतो वर्णानुच्चारयेद् बुधः॥[13]

इसी के अग्रिम क्रम में महर्षि याज्ञवल्क्य पुनः कहते हैं -

प्रकृतिर्यस्य कल्याणी दन्तोष्ठौ यस्य शोभनौ।

प्रगल्भश्च विनीतश्च स वर्णान् वक्तुमर्हति॥[14]

अर्थात् वही वाचक शुद्धोच्चारण में समर्थ हो सकता है जिसकी प्रकृति अर्थात् स्वभाव कल्याणकारी हो, दन्त एवं ओष्ठ सुशोभित होवें, जिसका उच्चारण प्रगल्भ एवं विनीत (अनुशासित तथा विनम्रता से युक्त) हो, वह उत्तम वर्णोच्चारण में समर्थ हो सकता है।

नाभ्याहन्यान्न निर्हन्यान्न गायेन्नैव कम्पयेत्।

यथाऽऽदावुच्चरेद् वर्णांस्तथैवैनान् समापयेत्॥[15]

महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार उत्तम वक्ता वह है जो वर्णोच्चारण करते समय अत्यधिक आघात एवं निर्घात न देवे अर्थात् वक्ता को व्यर्थ के बलाघात से बचना चाहिये। आरम्भ से अन्त तक वर्णोच्चारण में यथावत् निर्वाह भी उत्तम पाठक का गुण है।

महर्षि पाणिनि शुद्धोच्चारण विधि दृष्टान्त माध्यम से भी प्रस्तुत करते हुये लिखते हैं -

जिस प्रकार व्याघ्री अपने शावकों को तीक्ष्ण दन्तों से पकड़ कर सावधानीपूर्वक ले जाती है, जिससे शावकों को कष्ट न होवे,वह पतित एवं क्षत न होवे। उसी प्रकार वर्णोच्चारण के समय उच्चारणकर्ता के लिये यह आवश्यक है कि वह वर्णों को पीडित न करे। वर्णों का पात अर्थात् अस्पष्ट उच्चरित न करें। साथ ही, उसे वर्णभेद अर्थात् विकृत उच्चारण दोष करने से सावधान रहना चाहिये।

व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान् दष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।

भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत्॥ [16]

उच्चारणदोष एवं उनकी हानि

संस्कृतवाङ्मय न केवल उत्तम वर्णोच्चारण के लिये गुणों के विकास हेतु निर्देशित करता है अपितु उच्चारण दोष एवं उनके फलस्वरूप होने वाली हानियों को भी इंगित करता है।पाणिनीय शिक्षा में अधमपाठक के दोष बताए गए हैं -

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।

अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः॥[17]

अर्थात् गाते हुये पढ़ने वाला, शीघ्र पाठ करने वाला, शिरः कम्पन कर पाठ करने वाला, जो तात्पर्य जाने बिना जो लिखा है उसका पठन करने वाला, वाग्यन्त्र को सङ्कुचित कर अस्पष्ट पढ़ने वाला ; इन छह पाठकों को अधम पाठकों की श्रेणी में आचार्य पाणिनि ने स्थापित किया है।

याज्ञवल्क्य शिक्षा में चतुर्दश पाठदोषों का उल्लेख प्राप्त होता है-

शङ्कित भीतमुद्धुष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।

काकस्वरं मूर्ध्नि निंगतं तथा स्थानविवर्जितम्।

विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम्॥

व्याकुलं तालहीनं च पाठदोषाश्चतुर्दश।[18]

वक्ता की शङ्का, भीति, उद्धुष्ट अक्षराभिव्यक्ति, अव्यक्त अक्षराभिव्यक्ति, निरनुनासिक वर्णों का सानुनासिक परिवर्तन, काकस्वर (कर्कश ध्वनि),मूर्ध्नि-निर्गत तथा स्थान विवर्जित उच्चारण स्वर अथवा बलाघात का असम्यक् प्रयोग, रसहीन शुष्कोच्चारण, संश्लेष विरुद्ध पदों को विश्लेषित कर उच्चारण, अयोग्य स्थान पर बलाघात, वक्ता की व्याकुलता तथा तालहीन पाठन; ये वक्ता के चतुर्दश दोष माने गये हैं।

महर्षि पाणिनि भी पाणिनीयशिक्षा में महर्षि याज्ञवल्क्य का समर्थन करते हुये 20 दोषों की चर्चा करते हैं , जिनमें उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त विलम्बित उच्चारण,स्वरभङ्ग, प्रगीतोच्चारण अर्थात् रागबद्धगान करते हुये उच्चारण, पदग्रास-अक्षरग्रास, दीनोच्चारण आदि उच्चारण दोषों की भी गणना की गई है, यथा -

उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्तं
विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम्
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च
वदन्न दीनं न तु सानुनास्यम् ॥[19]

स्वरोच्चारण दोष के विषय में महाभाष्यकार कहते हैं -

ग्रस्तं निरस्तमविलम्बितं निर्हत - मम्बूकृतं ध्मातमथो विकम्पितम् ।
सन्दष्टमेणीकृतमर्धकं द्रुतं विकीर्णमेताः स्वरदोषभावनाः॥[20]

इस प्रकार महाभाष्यकार भी स्वरों के उच्चारण में 12 दोषों का उल्लेख करते हैं; जिनमें उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त अम्बूकृत दोष अर्थात् मुखविवर जल अथवा फेन से पूर्ण कर उच्चारण करना, ध्मात दोष वह है जिसमें धौंकनी के समान फूंफकार का स्वर प्राप्त होवे। इसके अतिरिक्त एणीकृत दोष में स्वर मृग सदृश उछलता हुआ प्रतीत होता है। उच्चारण में आधा समय देना अर्धकदोष है। त्वरित उच्चारण से द्रुत नामक दोष होता है। विकीर्ण दोष में मात्रा का बिखराव प्रतीत होता है ।

वर्णोच्चारण में अथवा शब्दोच्चारण में दोष होने पर किस प्रकार की हानि सम्भव है; इसका वर्णन भी शिक्षाग्रन्थों में वर्णित है। महर्षि पाणिनि कहते हैं -

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।। [21]

महर्षि पाणिनि इस श्लोक में स्वरोच्चारण दोषों का उल्लेख करते हुये स्पष्ट करते हैं कि सम्यक् स्वरप्रयोग रहित मन्त्र मिथ्याप्रयुक्त अर्थात् व्यर्थ हो जाता है, जिससे विपरीत फलप्राप्ति होती है अर्थात् वह मन्त्र वाग्वज्र के समान यजमान का ही नाशक होता है। यहाँ दृष्टान्त के रूप में एक प्रसंग प्रस्तुत किया गया है - त्वष्टा द्वारा क्रुद्ध होकर इन्द्र के वध हेतु यज्ञानुष्ठान किया गया। उस यज्ञ में ऋत्विजों द्वारा 'इन्द्रशत्रुर्विवर्धस्व' मन्त्र द्वारा आहुतियाँ प्रदान की गई । पुरोहितों द्वारा मन्त्रोच्चारण आद्युदात्त कर दिया गया। अतः अर्थपरिवर्तन होने पर स्वरदोष होने पर विपरीत फलोत्पत्ति प्राप्त हुई।

इसी प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्य उच्चारणदोष की फलश्रुति इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

ज्ञातव्यश्च तथैवार्थो वेदानां कर्मसिद्धये ।
पठन् मात्रापपाठात्तु पङ्के गौरिव सीदति ॥[22]

अर्थात् कर्मसिद्धि हेतु वेदार्थ ज्ञान आवश्यक है। अर्थज्ञान हेतु अपपाठ से रक्षण आवश्यक है। मात्राओं का समुचित उच्चारण सम्यक् अर्थज्ञान में सहायक है।मात्राओं का अपपाठ करने वाला पङ्कगत गौ के समान उपायरहित हो जाता है ।

शुद्धोच्चारण की आवश्यकता एवं लाभ - संस्कृत वाङ्मय में न केवल शास्त्रग्रन्थों, स्मृतियों अथवा शिक्षा वेदाङ्ग में अपितु काव्यों में भी उच्चारण महिमा अर्थात् शुद्धोच्चारण की आवश्यकता एवं लाभ वर्णित है।

महाकवि कालिदास ने रघुवंशम् महाकाव्य में शुद्धोच्चारण करने वाले वक्ता को विष्णु रूपी पदवी से सम्पन्न किया है।

पुराणस्य कवेस्तस्य वर्णस्थानसमीरिता ।
बभूव कृतसंस्कारा चरितार्थैव भारती ॥[23]

आदिकवि भगवान् विष्णु की वाणी वर्णस्थानों से उच्चरित होकर एवं व्याकरणादि संस्कारों से युक्त होकर चरितार्थ हो गई है। आचार्य भर्तृहरि उत्तम वाक् को मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ आभूषण मानते हैं-

क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं, वाग्भूषणं भूषणम्।[24]

महाकवि भारवि ने भी अपने महाकाव्य किरातार्जुनीयम् में उत्तमभाषा एवं उच्चारणक्षमता को कृतपुण्यों का फल माना है-

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः
प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां
प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ॥ [25]

काव्यग्रन्थों के अतिरिक्त शास्त्र एवं वेदाङ्ग भी शुद्धोच्चारण को न केवल इहलोक अपितु परलोक में अभ्युदय प्राप्ति हेतु आवश्यकता मानते हैं। महाभाष्यकार लिखते हैं -

एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामदुग्भवति।

पाराशरी शिक्षा के अनुसार शुद्धपठन मोक्ष का द्वार एवं वैष्णवपद प्राप्ति का मार्ग है -

अशुद्धपठनाच्चैव नैव मोक्षं प्रपेदिरे।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुद्धपाठी भवेद्विजः ॥[26]

इसी प्रकार पुनः ग्रन्थकार लिखते हैं -

एवं ज्ञात्वा पठेद्यस्तु स गच्छेद् वैष्णवं पदम्।
न मे प्रियो द्विजः कश्चिच्छुद्धपाठी त्वतिप्रियः ॥[27]

इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृतवाङ्मय में शुद्धोच्चारणविधि, उत्तमपाठकनिर्माण हेतु आवश्यक गुणों के विकास, उच्चारण दोष सम्बन्धी कारण एवं उन दोषों से होने वाली हानियाँ एवं शुद्धोच्चारण के इहलौकिक एवं पारलौकिक लाभ के विषय में विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। भारत जैसे विशाल देश में जहाँ अनेक भाषायें प्रचलित हैं; क्षेत्रप्रभावजन्यदोष रहित वर्णों के शुद्धोच्चारण हेतु संस्कृत वाङ्मय में वर्णित वर्णोच्चारण-विधि निश्चित रूप से अत्यंत प्रासंगिक है, विशेषकर संस्कृत भाषा-शिक्षण की दृष्टि से यह वर्णन अपरिहार्य है। अतः न केवल भाषा सौन्दर्य, अपितु अर्थशुद्धि की दृष्टि से भी इन ग्रन्थों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

सन्दर्भ

1. वाक्यपदीय/ब्रह्मकाण्डम्/124
2. काव्यादर्श-1/4
3. ऋग्वेद. 10.125.5
4. महाभाष्य /1.1.2
5. शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य / 1.99 -101
6. पाणिनीय शिक्षा/6,7,9
7. नाट्यशास्त्रम् /17.130
8. वाक्यपदीय/ब्रह्मकाण्डम्/112,113,115
9. आपिशलिशिक्षा / 8.1
10. पाणिनीय शिक्षा/31
11. महाभाष्य / प्रथम आह्निक
12. पाणिनीय शिक्षा/33
13. याज्ञवल्क्य शिक्षा /23
14. याज्ञवल्क्य शिक्षा /27-28
15. याज्ञवल्क्य शिक्षा /24
16. पाणिनीय शिक्षा/25
17. पाणिनीय शिक्षा/32
18. याज्ञवल्क्य शिक्षा / 28,29,30
19. पाणिनीय शिक्षा/35
20. महाभाष्य / 1.1.1
21. पाणिनीय शिक्षा/52
22. याज्ञवल्क्य शिक्षा /42
23. रघुवंशम् /10/36
24. नीतीशतकम्/19
25. किरातार्जुनीयम् /14/3
26. पाराशरी शिक्षा /113
27. पाराशरी शिक्षा /159

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. भाष्यकार- सातवलेकर श्रीपाद दामोदर, ऋग्वेदभाष्यम्,मानव उत्थान सङ्कल्प संस्थान, नईदिल्ली, ई. सन् 2010, संवत् 2067
2. आचार्य दण्डी, व्याख्याकार- मिश्र आचार्य रामचन्द्र, काव्यादर्श,चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी, ई. सन् 1958, संवत् 2015
3. महर्षि पाणिनि, भाष्यकार-अवस्थी बच्चूलाल, पाणिनीयशिक्षा, कालिदास संस्कृत अकादमी,उज्जयिनी, द्वितीय संस्करण, संवत् 2075
4. भर्तृहरिः, वाक्यपदीयम्; व्याख्याकार-त्रिपाठी, डॉ. रामकिशोर, वाक्यपदीयम् (ब्रह्मकाण्डम्),भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी, प्रथम संस्करण ई. सन् 1997

5. आचार्य कात्यायन, व्याख्याकार –वर्मा, डॉ. वीरेन्द्र कुमार, शुक्लयजुर्वेद प्रातिशाख्य, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली ई. सन् 1987
6. महर्षि याज्ञवल्क्य,भाष्यकार-स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक,याज्ञवल्क्य शिक्षा,श्री प्रतापसिंह ट्रस्ट,करनाल, ई. सन् 1967
7. आचार्य भरतमुनि, सम्पादक - साहित्याचार्य शास्त्री मधुसूदन,नाट्यशास्त्रम् (द्वितीयो भागः) , काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, ई. सन् 1975
8. आपिशलिमुनि, आपिशलिशिक्षा, ebharatisampat.in, दिनाङ्क 21/05/2026, समय- 10:40 pm
9. महाकवि कालिदास, व्याख्याकार-आचार्य नारायण राम 'काव्यतीर्थ', रघुवंशम्, निर्णयसागर मुद्रणालय, मुम्बई ई. सन् 1948
10. महाकवि भारवि, व्याख्याकार -श्री बद्रीनारायण मिश्र, किरातार्जुनीयम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी, ई. सन् 2020
11. पाराशरः, पाराशरीशिक्षा, ebharatisampat.in, दिनाङ्क 20/05/2026,समय- 08:45 pm
12. भर्तृहरि, टीकाकार-डॉ.राजेश्वर शास्त्री मुसलगांवकर, नीतिशतकम्,चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी,संवत् 2068